अथ तिलः । तस्य तद्भेदानां च गुणानाह

तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवन्योऽरण्यतिलः स्मृतः । तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः ॥
विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत् ।
बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः ॥ ६४ ॥
दन्स्योऽरण्यमूत्रकृद् ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः । कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः ॥
अन्ये हीनतरः प्रोक्तास्तज्ज्ञै रक्तादयस्तिलाः ॥ ६५ ॥

तिल का संस्कृत नाम—तिल ही है । भेद—काले , सफेद तथा लाल रङ्गों के भेद से तिल ३ प्रकार के होते हैं । जो तिल जङ्गलों में होता है वह वन्यतिल और अरण्यतिल नाम से प्रसिद्ध है ।

तिल—कटु, तिक्त, मधुर तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में कटुरस युक्त, स्वादिष्ट, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, कफ तथा पित्तनाशक, बलकारक, केशों के लिये हितकर, स्पर्श में शीतल, त्वचा के लिये हितकर, दुग्धवर्धक, व्रण में लाभ पहुंचाने वाला, दांतों के विकारों को दूर करनेवाला, थोड़ा

मूत्रकारक, ग्राही, वातनाशक, जठराग्नि तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला होता है। तिलों में काला-तिल—वीर्यवर्धक तथा सर्वोत्तम होता है। सफेद तिल—गुणों में मध्यम होता है। इससे अन्य जो लाल वगैरे तिल हैं वे गुणों में अत्यन्त हीन हैं ऐसा निघण्टु के विद्वानों का मत है॥ ६६-६५॥

१५ तिल

हि०-तिल, तील, तिली। **बं०**-तिलगाछ। **म०**-तीळ। **गु०**-तल। **क०**-हुल्लेल्लु। **ते०**-नुव्वुलु। **ता०**-एल्लु। **फा०**-कुंजद। **अ०**-सिमासिम, बजरुलखुस खासुलबरी। **अं०**-Gingelli (जिंजेल्ली), Sesame (सीसेम)। **ले०**-*Sesamum indicum Linn.* (सिसेमम् इंडिकम्), Fam. Pedaliaceae (पेडालिएसी)।

इसकी प्रायः सभी प्रान्तों में खेती की जाती है। इसका **क्षुप**-३½ से ४½ फीट. ऊँचा, काण्ड चौपहल एवं अनेक शाखायुक्त होता है। **पत्ते**-नीचे से ऊपर विभिन्न प्रकार के, दन्तुर या अखण्ड होते हैं। **पुष्प**-विभिन्न रंगों के, श्वेत से लेकर गहरे बैंगनी रंग के एवं नलिकाकार द्व्योष्ठ होते हैं। **फली**-१½ से २ इञ्च लंबी, करीब ½-१ इञ्च गोलाई में एवं अनेक बीजों से युक्त होती है। **बीज**-विभिन्न प्रकार के अनुसार श्वेत, मन्दश्वेत, हलके भूरे, गहरे भूरे या काले रंग के हुआ करते हैं। ये चिपटे, अंडाकार तथा एक इञ्च की लम्बाई में ६ से ८ तथा चौड़ाई में १० से १२ आते हैं। विभिन्न ऋतुओं में बोने के अनुसार इनके भेद हुआ करते हैं।

रासायनिक संगठन—इनमें प्रकार तथा स्थानभेद से तेल की मात्रा ३७-५७% एवं कार्बोहाइड्रेट १४ से २२% एवं प्रोटीन २१ से २६% पाया जाता है। काले तिल में प्रोटीन अधिक तथा कार्बोहाइड्रेट कम रहता है। भूरे की अपेक्षा श्वेत में प्रोटीन अधिक पाया जाता है। ताजे पत्तों में काफी लुआब रहता है।

गुण और प्रयोग- तिल का तथा इसके तेल का उपयोग नित्य के व्यवहार में किया जाता है। यह स्नेहन, आनुलोमिक, मूत्रजनन, वाजीकर, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, बल्य, व्रणशोधन रोपण तथा केशवर्धन है।

(१) अर्श में इसको मक्खन के साथ खिलाते हैं तथा पीसकर गरमकर इससे सेकते हैं।

(२) मछली खाकर अजीर्ण हो तो इसके पंचांग का क्षार देते हैं। उदर शूल में तिल को सुगंधि पदार्थ के साथ पीसकर गोली बनाकर देते हैं। तिल से दांत मजबूत रहते हैं।

(३) खांसी में तिल का काथ, चीनी मिलाकर पिलाते हैं। सूखी खांसी में ताजे पत्तों का दिम थोड़ा थोड़ा पिलाते हैं।

(४) मूत्राश्मरी में तिलक्षार दूध तथा शहद के साथ देते हैं।

(५) इसका गर्भाशय पर संकोचक प्रभाव होने से अनार्तव इत्यादि में से इसका उपयोग करते हैं।

(६) इसका पुल्टिस व्रण पर बांधते हैं। तेल का भी उपयोग व्रण पर लगाने के लिये करते हैं।

मात्रा—बीज १ से २ तोला; पंचांगक्षार ५ से १५ रत्ती।

४६. तिल

कुल—तिल-कुल (पिडैलिएसी-Pedaliaceae)

नाम—लै०-सिसेमम इण्डिकम (Sesamum indicum Linn.); सं०-तिल, हि०-तिल; बं०-तिल; म०-तिल; गु०-तल; सि०-तिर; ता०-एल्लु; ते०-गुब्बुलु; अ०-सिमसिम, समसम, हल; फा०-कुंजद; अं०-सिसेमम (Sesamum)।

स्वरूप—इसका वर्षायु क्षुप १-३ फुट ऊँचा किञ्चित् दुर्गन्धयुक्त तथा ग्रन्थिल होता है। इसका **काण्ड**-मृदुरोमश होता है। **पत्र**-२-५ इञ्च लम्बे, छोटे-बड़े अनेक प्रकार की पत्तियाँ रेखाकार, भालाकार या आयताकार, एकान्तर; बीच की पंक्तियाँ प्रायः लट्वाकार और दन्तुर तथा नीचे की पत्तियाँ अभिमुख क्रम में प्रायः खण्डित या चीरित होती हैं। **पुष्प**-कोमल, लोमयुक्त; पत्तियों के अक्षभाग से झुकी मञ्जरियों में बैंगनी या श्वेताभ बैंगनी या पीत चिह्नों से युक्त होते हैं। **फल**-१ इञ्च लंबा, आयताकार-चतुष्कोणीय, कुछ दबा हुआ, गहरी चार परिखाओं से युक्त होता है। **बीज**-छोटे, चिकने, वर्ण में श्वेत, रक्त या कृष्ण होते हैं। **पुष्प**-अक्टूबर-दिसम्बर; **फल**-दिसम्बर-जनवरी।

जाति—बीजों के वर्णभेद से यह तीन प्रकार का होता है—१. श्वेत २. रक्त और ३. कृष्ण। श्वेत जाति में तैल अधिक निकलता है। रक्तजाति को 'रामतिल' भी कहते हैं। इसका क्षुप कृष्णतिल के समान ही होता है किन्तु इसके पुष्प चित्र-विचित्र और पत्र कुछ बड़े होते हैं। कृष्णतिल गुणकर्म की दृष्टि से प्रशस्त माना जाता है और औषध-कार्य में इसीका प्रयोग होता है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारत में इसकी खेती की जाती है।

रासायनिक संघटन—तिल के बीजों का रासायनिक संघटन निम्नांकित है :—

आर्द्रता	४.१–६.५	प्रतिशत
स्नेहद्रव्य	४३.०–५६.८	,,
प्रोटीन	१६.६–२६.४	,,
सूत्र	२.९–८.६	,,
कार्बोहाइड्रेट	९.१–२५.२	,,
खनिज द्रव्य	४.१–७.४	,,
कैल्शियम	१.०६–१.४५	,,
फास्फोरस	०.४७–०.६२	,,

इसमें अनेक जीवनीय द्रव्य (ए, बी और सी) पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

तिलतैल में सिसेमिन तथा सिसेमालिन नामक दो घटक तत्त्व पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, सिसेमाल नामक एक फैनाल यौगिक भी पाया जाता है।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध **रस**—मधुर **अनुरस**–कषाय–तिक्त
विपाक—मधुर **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह गुरु, स्निग्ध, मधुर एवं उष्ण होने से वात का शमन करता है तथा कफ और पित्त का प्रकोप करता है। योगवाही होने के कारण द्रव्यान्तर के संयोग और संस्कार से त्रिदोषशामक होता है।

संस्थानिक कर्म·बाह्य—यह स्नेहन, वेदनास्थापन, सन्धानीय, व्रणशोधन, व्रणरोपण और केश्य है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह मेध्य है।

पाचनसंस्थान—स्निग्ध होने से दन्त्य, उष्ण होने से दीपन, ग्राही और शूल-प्रशमन है।

रक्तवहसंस्थान—मधुर-कषाय होने के कारण यह रक्तस्राव को रोकता है।

श्वसनसंस्थान—स्निग्ध होने से यह श्वासनलिकागत रूक्षता को दूर करता है।

मूत्रवहसंस्थान—यह उष्ण होने से मूत्र को कम करता है।

प्रजननसंस्थान—उष्ण होने से यह वाजीकरण, आर्त्तवजनन और स्निग्ध होने से स्तन्यजनन है।

सात्मीकरण—स्निग्ध–मधुर होने से यह बल्य और वृष्य है।

त्वचा—त्वचा के लिए स्नेहन और हितकर है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातविकारों में इसका प्रचुर प्रयोग होता है। विशिष्ट द्रव्यों से सिद्ध होने पर तैल त्रिदोषजन्य विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—त्वचा में रूक्षता अधिक होने से इसके तैल का अभ्यंग करते हैं। पक्षाघात, अर्दित आदि वात-विकारों में विशिष्ट द्रव्यों से संस्कृत कर अभ्यंग करते हैं। शिर आदि अंगों में पीड़ा होने पर इसकी मालिश करते हैं। पीड़ा की शान्ति के लिए अर्श में इसका कल्क गरम कर बाँधते हैं। छिन्न-भिन्न, भग्न-क्षत आदि में इसका परिषेक, अवगाह, अभ्यंग आदि के रूप में प्रयोग होता है। व्रणों के शोधन एवं रोपण के लिए इसका लेप और इसके तैल का अश्चोतन भी करते हैं। केशों को बढ़ाने तथा काला करने के लिए तिल के पत्र एवं जड़ के क्वाथ से बाल धोते हैं और उसके तैल का शिर में अभ्यंग करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्क-दौर्बल्य एवं तज्जनित विकारों में तिल का प्रयोग करते हैं।

पाचनसंस्थान—दाँतों की दुर्बलता में तिल के बीज चबाते हैं जिससे दाँत मजबूत होते हैं। अग्निमांद्य एवं ग्रहणी आदि रोगों में भी यह लाभकर है।

रक्तवहसंस्थान—अर्शरोग में रक्तस्राव को रोकने के लिए मक्खन के साथ खाने को देते हैं। तिल स्वतः कषाय होने से स्तम्भन है और फिर उष्णता के कारण उसमें जो दोष होते हैं उन्हें मक्खन का संयोग दूर करता है।

श्वसनसंस्थान—हिक्का, श्वास आदि वातप्रधान विकारों में इसका प्रयोग करते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—प्रमेह के लिए यह उत्कृष्ट औषध है। इससे मूत्र कम होता है और बल भी बढ़ता है। तैल का प्रयोग पूयमेह में करते हैं। इससे स्नेहन होता है और पूय नष्ट होता है।

प्रजननसंस्थान—यह रजोरोध, कष्टार्त्तव, स्तन्याल्पता एवं कामशक्ति-ह्रास में प्रयुक्त होता है।

सात्मीकरण—दौर्बल्य में तिल के मोदक प्रसिद्ध हैं।

त्वचा—त्वचागत विकारों में तिल खिलाते हैं।

प्रयोज्य अंग—बीज, तैल।

मात्रा—बीजचूर्ण-३-६ ग्रा०; तैल-१०-२० मि० लि०।

विशिष्ट योग—तिलादि गुडिका, तिलादिलेप, तिलाष्टक।

× × ×

'स्निग्धोष्णो मधुरस्तिक्तः कषायः कटुकस्तिलः।
त्वच्यः केश्यश्च बल्यश्च वातघ्नः कफपित्तकृत्॥' (च. सू. २७)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– तिलः, होमधान्यम्, पितृतर्पणः। हि.– तिल, तिल्ली, तील, मीठा तिल। बं.– तिलगाछ। म.– तिल, तील। गु.– तैल। द्रा.क.– एलु, एल्लु। ते.– तोवुलु, मचिनूने, जुव्वुलु। ता.– वल्लेनेव, वल्लेन्नेव। द्रा.– वाटिक तिल। फा.– कुन्दजखस खास। स्याह, कोकिनार। अ.– सिमोसिम, वजरुखस। अं.– Sesamum niger seeds (सिसेमम निगर सीड्स)। ले.– Sesamum indicum (सिसेमम इण्डिकम)।

तिल की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– होमधान्यम्। वनोद्भवः।

तिल के भेद– कृष्णः, सितः, रक्तः, वन्यः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– तिल रस में कटु, तिक्त, मधुर तथा कषाय है और गुरु है। विपाक में

कटु है, स्वादिष्ट है, स्निग्ध तथा उष्ण है और कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। तिल बल कारक है, केश वर्द्धक है, स्पर्श में शीतल है, त्वचा के लिए हितकर है, दूध वर्द्धक है तथा व्रण के लिए हितकर है। यह दांत के लिए हितकर, थोड़ा मूत्र कारक, ग्राही, वातनाशक तथा अत्यधिक जाठराग्नि को बढ़ाने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार- तिल स्निग्ध, वर्ण, बल तथा जाठराग्नि वर्द्धक है, दूध विकार तथा वात विकार का नाश करता है। यह उष्ण है, पित्त कारक है, थोड़ा मूत्रकारक है, केश के लिए हितकर है तथा व्रण के लिए अधिक पथ्यकर है। यह ग्राही है, मधुर तथा कषाय एवं तिक्त रस है तथा विपाक में कटु है। काला तिल पथ्यकारक है, सफेद तिल थोड़ा गुणकारक है, अन्य सभी प्रकार के तिल क्षीण गुण वाले हैं।

भावप्रकाश के अनुसार- काला तिल, सफेद तिल, रक्त तिल, वन्द तिल या अल्प तिल इस प्रकार तिल चार प्रकार का होता है। तिल-रस में कटु, तिक्त, मधुर तथा कषाय रस है और गुरु है। विपाक में कटु रस, स्वादिष्ट, स्निग्ध तथा उष्ण है और कफ एवं पित्त कारक है। यह बल कारक, केशवर्द्धक, शीतस्पर्श त्वचा के लिए हितकर, दूध बढ़ाने वाला तथा व्रण के लिए हितकर है। यह दांत के लिए हितकर, थोड़ा मूत्रकारक, ग्राही तथा वात नाशक है और अधिक जाठराग्नि वर्द्धक है। काला तिल सभी तिलों में श्रेष्ठ है तथा शुक्रवर्द्धक है। सफेद तिल मध्यम गुण वाला है। अन्य रक्त आदि तिल हीन गुणवाले हैं ऐसा तिल के गुण को जानने वाले कहते हैं।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- पिण्याक तिल की खली मधुर है, रुचिकारक है, तीक्ष्ण है तथा नेत्र विकार को उत्पन्न करता है। यह मल को रोकने वाला है, रक्त विकार, कफ विकार, वात विकार तथा प्रमेह को नष्ट करता है। यह रक्त पित्त को बढ़ाता है, बल कारक तथा पुष्टि कारक है ऐसा चिकित्सकों का मत है।

राजवल्लभ के अनुसार- तिल विपाक में मधुर, बलकारक है, स्निग्ध है तथा इसे व्रण के ऊपर लेप करना ही पथ्य है। यह दांत के लिए हितकर है, जाठराग्नि तथा मेधावर्द्धक है, थोड़ा मूत्रल है, रुचिकारक है, केश के लिए हितकर है, वातनाशक है तथा गुरु है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- तिल के तैल को उत्तम स्नेह कहा गया है। यह कषाय रस वाला, रस में स्वादिष्ट, सूक्ष्म तथा उष्ण है और व्यवायि है। इनके अतिरिक्त पित्त कारक है, मलमूत्र को रोकने वाला है किन्तु कफ को नहीं बढ़ाता है। तिल का तैल स्नान, अभ्यङ्ग तथा अवगाहन के लिए विशेष लाभदायक है। इसी प्रकार यह अपानबस्ति में तथा नस्य कर्म, कर्ण पूरण तथा नेत्र पूरण तथा अन्न पान विधि में वात शान्ति के लिए प्रयोग करने योग्य है। छिन्न, भिन्न, पिष्ट, भक्षित, क्षत, पातित, भग्न, फुटित, विद्ध, अग्नि दग्ध, विश्लिष्ट, दारित, भय आदि से अभिहत, भुग्न, मृत तथा व्याघ्र आदि के द्वारा क्षत होने पर इस तैल के योग से तथा तैल के संस्कार से सभी रोगों को दूर करने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार- तिल का तैल केश को अलंकृत बनाता है, मधुर है, तिक्त है, कषाय है, उष्ण है, तीक्ष्ण है, बल कारक है, कफ विकार, वात विकार, क्रिमि विकार, खुजली तथा कण्डू को दूर करता है तथा कान्ति दायक है।

भावप्रकाश के अनुसार- तिल का तैल गुरु, बल तथा वर्ण को स्थिर करने वाला एवं दस्तावर है, वीर्यवर्द्धक है, विकाशि है, विशद है और रस तथा विपाक में मधुर है; सूक्ष्म है, कषाय रस वाला है तथा तिक्त रस वाला है और वात कफ नाशक है। यह उष्ण वीर्य है, स्पर्श में शीतल है, बलवर्द्धक है तथा रक्त-पित्त कारक है, लेखन है, मल-मूत्र को रोकने वाला है तथा गर्भाशय को शुद्ध करने वाला है; जाठराग्नि दीपक है, बुद्धिवर्धक

मेधावर्द्धक है, व्रण तथा प्रमेह रोग को दूर करता है, योनि विकार तथा शिरःशूल का नाश करता है तथा हल्का करता है, त्वचा के लिए हितकर, केश के लिए हितकर है, नेत्र के लिए हितकर अभ्यङ्ग करने से होता है; भोजन करने पर अन्य गुण होते हैं। यह छिन्न, भिन्न, च्युत, उत्पिष्ट, मथित, क्षत, पिच्छित, भग्न, स्फुटित, विद्ध, अग्नि दग्ध, विश्लिष्ट, दारित, अभिहत, निर्भुग्न तथा मृग-व्याघ्र आदि से क्षत होने पर, वस्ति कर्म में, पान करने तथा अन्न का संस्कार करने, नस्य में, कर्ण तथा नेत्र पूरण में, सेक, अभ्यङ्ग तथा अवगाहन में तिल का तैल प्रशस्त है।

वैद्यक शास्त्र में तिल का प्रयोग-

(१) **अर्श रोग में तिल का प्रयोग-** तिल के कल्क को थोड़ा गरम कर तथा तेल मिलाकर पोटली में रखकर स्वेदन करे (च.चि.अ.९)। मक्खन तथा तिल का कल्क प्रतिदिन सेवन करने से रक्तार्श शान्त होते हैं (च.चि.अ.९)। (२) **प्रवाहिका में तिल का प्रयोग-** कच्चा बेल तथा तिल का कल्क समान भाग लेकर दही का अम्ल पानी तथा स्नेह को मिलाकर खंड बनावे और सेवन करे। यह प्रवाहिका का नाश करता है (च.चि.अ.१०)। (३) **व्रण के उपनाह के लिए तिल का प्रयोग-** तिल का कल्क अम्ल दही तथा सत्तू को पीड़ी एक साथ मिलाकर व्रण का उपनाहन (बाँधना) हितकर है (च.चि.अ.१३)। (४) **वातज व्रण में तिल का प्रयोग-** जो व्रण वातजन्य दाह तथा वेदना वाले हैं उनको तिल तथा तीसी के कल्क को दूध में पकाकर (पुल्टिस) बाँधे। यह व्रण को शान्त करता है (च.चि.अ.१३)।

(१) **वातरक्त में तिल का प्रयोग-** तिल को पीस कर तथा दूध में पकाकर वात रक्त में लेप करे (वाग्भट, चि.अ.२२)। (२) **पोषण के लिए तथा दांतो को मजबूत बनाने के लिए तिल का प्रयोग-** काले तिल को कूटकर शीतल जल के साथ जो खाते हैं उनके शरीर का अच्छी तरह पोषण होता है तथा दांत जीवन पर्यन्त मजबूत रहते हैं (वाग्भट, उ.अ.३९)।

तृष्णा में तिल पिण्याक का प्रयोग- तृष्णा रोग में तिल की खली तथा काञ्जी मिलाकर पूरे शरीर में लेप करे (वाग्भट.चि.अ.३)।

मूत्र रोग में तिलकाण्ड क्षार का प्रयोग- जो व्यक्ति तिल के काण्ड (शाखा) के क्षार को दही तथा मधु मिलाकर पान करता है उसका मूत्रावरोध शान्त हो जाता है और वह शीघ्र ही सुख का अनुभव करता है (हा.चि.अ.३०)।

(१) **वातशूल में तिल का प्रयोग-** तिल के कल्क की गुटिका बनाकर उदर के ऊपर घुमाये। यह गुटिका पेट के ऊपर घुमाने से अतिदुःसह उदर की पीड़ा को शान्त करती है (चक्र.शूल चि.)। (२) **अश्मरी में तिल नाल क्षार का प्रयोग-** तिल के नाल का क्षार मधु तथा दूध मिलाकर सेवन करने से तीन दिन में अश्मरी रोग नष्ट होता है (चक्र.अश्मरी चि.)।

(१) **आमवात में तिल का प्रयोग-** तिल तथा सोंठ के कल्क को आमवात रोग में भक्षण करे (भाव. आमवा.चि.)। (२) **व्रण शोधन तथा रोपण में तिल का प्रयोग-** तिल की वर्ति या कल्क व्रण का शोधन तथा रोपण करते हैं (भाव.व्रण शोथ.चि.)। (३) **सूर्यावर्त में तिल का प्रयोग-** सूर्यावर्त रोग में तिल को दूध के साथ पीस कर स्वेदन करे (भाव.शिरोरोग चि.)। (४) **मांस भक्षण जन्य अजीर्ण में तिल नाल क्षार का प्रयोग-** तिल के नाल का क्षार सेवन करने से सभी प्रकार के मांस भक्षण जन्य अजीर्ण का पाचन होता है (भाव.विशिष्ट द्रव्याजीर्ण चि.)। (५) **इन्द्रलुप्त रोग में तिल पुष्प का प्रयोग-** गोखरु तथा तिल का पुष्प समभाग

लेकर मधु तथा घृत मिलाकर सिर के ऊपर लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग में सिर के ऊपर बाल उग जाते (भाव.क्षुद्ररोगचि.)।

(१) रक्तातिसार में तिल का प्रयोग- बेर के मूल का कल्क तथा तिल का कल्क लेकर बकरी के के साथ सरस बनाकर रक्तातिसार में सेवन करे (वंगसेन, अतिसार चि.)। **(२) नेत्ररोग में तिल का प्रयोग** आंख के ऊपर कृष्ण तिल के कल्क का लेप करना नेत्र के लिए हितकर है तथा तिमिर रोग (मोतिया बिंद को शान्त करता है (वंगसेन, नेत्र रोग चि.)।

Fixed oil 50 to 60 p.c.; proteid 22 p.c., mucilage 4 p.c., and ash